प्रवचन-५०, श्लोक-७०, गाथा-४७, सोमवार, श्रावण शुक्ल १४, दिनांक २५-०८-१९८०

नियमसार, ४५-४६ गाथा का अन्तिम कलश है।

आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत्कर्म भिन्नं तयोर्या,
प्रत्यासत्तेर्भवति विकृतिः साऽपि भिन्ना तथैव।
काल-क्षेत्र-प्रमुख-मपि यत्तच्च भिन्नं मतं मे,
भिन्नं भिन्नं निजगुणकलालङ्कृतं सर्वमेतत्।।

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ऐसा कहते हैं कि **मेरा ऐसा मंतव्य है...** मेरा ऐसा विचार है, मन्तव्य है-श्रद्धा है, प्रतीति ऐसी है कि आत्मा पृथक् है। एक बोल से नहीं लिया। **आत्मा पृथक् है और उसके पीछे-पीछे चलनेवाला कर्म पृथक् है;...** आत्मा के कारण कर्म चलता नहीं। कर्म अपने-अपने कारण से आत्मा के पीछे-पीछे चलता है। आहाहा! आत्मा के कारण से नहीं, क्योंकि भिन्न द्रव्य है। आहाहा! आत्मा अन्दर भिन्न चलता है और कर्म भिन्न चलता है। भिन्न कर्म के कारण से आत्मा नहीं चलता और आत्मा के कारण से कर्म साथ में आते नहीं। आहाहा! वस्तु—वस्तु अत्यन्त भिन्न है। आहाहा!

आत्मा और कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है,... विकार... आहाहा! **वह भी उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक् है;...** आहाहा! आत्मा पृथक् है, वैसे कर्म पृथक् चलते हैं, ऐसे विकृतभाव भी साथ में चलता है। कर्म तो निमित्त हैं। आत्मा की अपनी पर्याय में जो विकार होता है, वह स्वयं के कारण चलता है। आहाहा! आत्मा स्वतन्त्र चलता है, कर्म स्वतन्त्र चलता है। कर्म निमित्त से उत्पन्न हुआ विकार भी स्वतन्त्र चलता है, क्योंकि वह पर्याय भी स्वतन्त्र है। जैसे द्रव्य आत्मा स्वतन्त्र है, कर्म भी स्वतन्त्र द्रव्य है, वैसे विकारी पर्याय भी स्वतन्त्र है। आहाहा!

कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है, वह भी उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक् है;... आहाहा! एक भव में से दूसरे भव में जाता है या भव में रहता है तो तीनों

प्रकार भिन्न-भिन्न हैं। आत्मा भिन्न, कर्म भिन्न, विकार भिन्न। आहाहा! तीनों सत् हैं। सत् स्वयं से है। सत् को पर की अपेक्षा नहीं। भले विकार है, वह भी उत्पाद-व्ययरूप सत् है न? उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तीनों सत् है, तो विकार भी स्वयं से सत् है। कर्म से नहीं, आत्मा से नहीं, द्रव्य (से नहीं), पर्याय में होता है, वह स्वतन्त्र है। आहाहा! ऐसे आत्मा की बात कभी सुनी अन्दर? आहा!

भगवान आत्मा पृथक्-पृथक् काम करता है। कर्म पृथक् काम करता है। विकृत अवस्था पृथक् रहती है। आहाहा! ऐसा जिसे भेदज्ञान हुआ, मुनि तो कहते हैं कि **मेरा ऐसा मंतव्य है...** मुनि ऐसा कहते हैं कि मेरा ऐसा मन्तव्य है। आहाहा! किसी के साथ या किसी के कारण से कोई चलता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! मेरे कारण से घर में स्त्री आती है, यह झूठ बात है। मेरे कारण से लड़का आता है, यह भी झूठ बात है। सब अपने-अपने स्वतन्त्र उस समय के काल में आते हैं। आहाहा! वस्त्र आते हैं, गहने आते हैं, पैसे आते हैं, उस समय स्वतन्त्र द्रव्य अपने-अपने कारण से पृथक्-पृथक्, आत्मा और कर्म की अपेक्षा बिना (आते हैं)। यह कर्म-वर्म भी स्वतन्त्र चीज़ है। आहाहा!

मेरा ऐसा मंतव्य है... मुनि ऐसा कहते हैं। मेरा विचार ऐसा है। आहाहा! **निज-निज गुणकला से...** आहाहा! अथवा **काल-क्षेत्रादि जो हैं, वे भी (आत्मा से) पृथक् हैं।** पंचम काल, चौथा काल, पहला काल, वह आत्मा से काल पृथक् है। आहाहा! क्षेत्रादि काल आदि और क्षेत्र आदि; और क्षेत्र, पर का क्षेत्र... आहाहा! यह क्या कहते हैं? कि आत्मा जहाँ है, वहाँ कर्म है, उस कर्म का क्षेत्र भी भिन्न है। आहाहा! अरे! विकार का क्षेत्र भी भिन्न है, ऐसा गाथा में कहते हैं। आहाहा! भगवान निर्मलानन्द अन्दर भिन्न है, उसमें जो मिथ्यात्व विकार, भ्रान्ति और रागादि, द्वेषादि होते हैं, वे भी स्वतन्त्र अपने काल और अपने क्षेत्र में रहते हैं। वे आत्मा के क्षेत्र में नहीं आते। आहाहा! गजब बात! वीतरागमार्ग का मूलरूप यह है।

आचार्य महाराज, मुनिराज तो कहते हैं कि मेरा मन्तव्य तो यह है। **मेरा ऐसा मंतव्य है...** मैं तो पंच महाव्रतधारी मुनि हूँ। मैं ऐसा मन्तव्य धारण करता हूँ कि कर्म भिन्न, आत्मा भिन्न, विकार भिन्न है। अरे! विकार और कर्म का क्षेत्र भिन्न है और विकार-कर्म का काल

भिन्न है। आहाहा! काल और क्षेत्र भी सब भिन्न है। आहाहा! धन्नालालजी! ऐसी बात है। ओहोहो!

अरे! प्रभु का मार्ग उजला (उज्ज्वल), स्वतन्त्र मार्ग। पर्याय-पर्याय स्वतन्त्र है। क्रमबद्ध में प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय, द्रव्य-गुण की अपेक्षा रखे बिना पर्याय स्वतन्त्र है। राग विकार होता है, वह भी कर्म से बिल्कुल नहीं होता। आहाहा! यह चर्चा (संवत्) २०१३ के वर्ष में बहुत चली थी। ईसरी में (चर्चा हुई थी)। विकार अपने से होता है। अपने षट्कारक से होता है। विकार पर्याय में कर्ता; विकार कार्य; विकार साधन; विकार करके रखा, वह सम्प्रदान; विकार से विकार हुआ, वह अपादान; विकार के आधार से विकार हुआ (वह अधिकरण)। आहाहा! जिसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं और जिसे कर्म की अपेक्षा नहीं। आहाहा!

यहाँ ऐसा कहते हैं, प्रत्येक गुण और प्रत्येक की पर्याय और उसका क्षेत्र और काल तथा द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं। किसी के साथ किसी को कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! यह तो जहाँ-तहाँ अहंकार (करे)। मैंने किया.. मैंने किया.. मैंने किया। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव चारों ही अपने-अपने कारण से भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा कहते हैं। लो! आहाहा! द्रव्य भी भिन्न है, विकार का क्षेत्र और काल भी भिन्न है और विकार से भिन्न कर्म, उसका क्षेत्र और काल भी भिन्न है। आहाहा! अपने से भिन्न स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, पैसा, लक्ष्मी, धूल.. धूल अर्थात् यह लक्ष्मी, वस्त्र, उन-उन के काल में, उन-उन के क्षेत्र में, उन-उन के भाव से वे स्वतन्त्र आते हैं। दूसरे से वे आते हैं और जाते हैं, ऐसी बात नहीं है। आहाहा!

ऐसी स्वतन्त्रता प्रभु के बिना कौन कहे? सर्वज्ञ परमात्मा-जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखा और वाणी निकली। आहाहा! उन्होंने कहा नहीं है; वाणी के कारण वाणी निकली है। यह आया न? वाणी का क्षेत्र भिन्न है, वाणी का द्रव्य भिन्न है, वाणी उत्पन्न होने का काल भिन्न है, आहाहा! और भाव भिन्न है। आहाहा! 'भगवान परमात्मा की वाणी' ऐसा कहना, वह भी व्यवहार से निमित्त से (कहा जाता है)। कठिन बात है। यह डाला है। सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का... पर्याय का भी क्षेत्र, काल भिन्न-भिन्न है। आहाहा!

निज-निज गुणकला से... प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने गुण की कला-पर्याय,

उससे **अलंकृत यह सब पृथक्-पृथक् हैं...** आहाहा! निज-निज गुण और पर्याययुक्त सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न है। आहाहा! एक परमाणु दूसरे परमाणु का कुछ भी नहीं करता। आत्मा दूसरे परमाणु का कुछ भी नहीं करता। आहाहा! बोलना, चलना, खाना, पीना, हिलना, यह सब स्वतन्त्र जड़ की क्रिया जड़ से होती है, आत्मा से नहीं। आहाहा! कैसे गले उतरे? पूरे दिन 'मैं करूँ... मैं करूँ.. यही अज्ञान है, गाड़ी का भार ज्यों श्वान खींचे।' गाड़ी हो और नीचे कुत्ते की गर्दन छू गयी हो, गाड़ी चलती हो तो वह गाड़ी मुझसे चलती है, ऐसा (वह मानता है); इसी प्रकार पैढ़ी में बैठा हो, घर में महिलाएँ बैठी हों, सब काम मुझसे होता है, सब व्यवस्था करनेवाला मैं हूँ, मैंने व्यवस्थित काम किये हैं; नहीं तो सब अव्यवस्थित हो जायेगा। अर..र..! प्रभु! प्रभु तो कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ व्यवस्थित ही है। व्यवस्थित है, उसकी दूसरा व्यवस्था करे, ऐसी बात नहीं है। आहाहा!

यहाँ यह कहा **निज-निज गुणकला से...** प्रत्येक द्रव्य निज-निज गुण की कला अर्थात् पर्याय से **अलंकृत...** उससे सहित **यह सब पृथक्-पृथक् हैं...** आहाहा! यदि एक बोल भी यथार्थ समझ में आये तो विवाद मिट जाये। कर्म से विकार होता है... कर्म से विकार होता है। ऐसा कहा कि कर्म से विकार नहीं होता, वहाँ तो बड़ी खलबलाहट हो गयी। अहो! यह तो भूले, मूल में भूले। मूल में भूल, ऐसा बोले। आहाहा! कर्म से विकार नहीं? आहाहा! नहीं, तो विकार स्वभाव हो जायेगा। आहाहा!

प्रभु! वह पर्याय का उस समय का स्वभाव ही है। आहाहा! कर्म से नहीं, आत्मा के गुण से नहीं। आहाहा! ऐसे अन्दर बैठ जाये तो ज्ञातादृष्टा हो जाये। किसी भी क्रिया का कर्ता मैं हूँ, मैं बोलता हूँ, या मैं समझाता हूँ, मैं पुस्तक बनाता हूँ। आहाहा! यह बात रहती नहीं परन्तु यह बात सुनने को मिलना कठिन पड़ती है। आहाहा! स्थानकवासी और श्वेताम्बर में तो यह बात ही नहीं है। आहाहा! उसमें तो यह सत्य बात है ही नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो स्पष्ट कर दिया है कि स्थानकवासी और श्वेताम्बर अन्यमती हैं, जैनमती नहीं। आहाहा! क्योंकि उन्होंने बहुत घोटाला किया है। भगवान को रोग, भगवान को दवा, भगवान के माता-पिता दो और... आहाहा! बहुत घोटाला है। उनकी सेवा करनेवाला, उनकी मदद करनेवाला मिथ्यादृष्टि है, निगोद में जायेगा। बहुत सूक्ष्म बात है।

ऐसा जब भगवान ने सूत्रपाहुड़ में कहा कि वस्त्र का टुकड़ा रखकर साधु माने,

मनावे, माननेवाले को भला जाने, वह निगोद में जायेगा। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य भगवान का वचन है। तो उस वस्त्र के टुकड़े के बदले यहाँ तो वस्त्र के ढेर के ढेर रखते हैं। आहाहा! विपरीत मान्यता का ठिकाना नहीं है। भगवान बालब्रह्मचारी हैं, उन्हें भी विवाह कर दिया (विवाहित बतला दिया)। कन्या हुई, दामाद हुए, ऐसा श्वेताम्बर में है। दामाद-जमाई। अरे भगवान! सब बात मिथ्या है। आहाहा! भगवान तो बालब्रह्मचारी थे। उन्होंने विवाह नहीं किया था। क्यों? (इसलिए) कि अन्तिम काल बहुत अल्प था, अन्तर में काम बहुत था तो उस विवाह में... पण्डितजी कहते हैं न दुर्घटना। स्त्री से विवाह अर्थात् दुर्घटना खड़ी हुई। है? आहाहा! उसके लिये रुकना, उसके लिये विषय, उसके लिये प्रसन्नता, उसके लिये वस्त्र, खाना-पीना और उसके सब साधन (बसाना)। आहाहा! दुर्घटना है। यहाँ तो कहते हैं कि दूसरे की दुर्घटना भी आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा! ऐसी बात है।

निज-निज गुणकला से... आचार्य पुकार करते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने गुण की पर्यायसहित (परिणमता है)। आहाहा! **सब पृथक्-पृथक् हैं (अर्थात् अपने-अपने गुणों तथा पर्यायों से युक्त सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं)।** है? आहाहा! अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! मुझे यह करना है और मुझे यह कराना है; उसने किया, वह ठीक किया, यह कोई बात रहती नहीं, प्रभु! मार्ग बहुत कठिन है, भाई!

अरे! सिर पर चौरासी के अवतार (नगाड़ा बजाते हैं)। आत्मा अनादि-अनन्त, जिसकी सत्ता अनादि-अनन्त, वह देह छूटे परन्तु सत्ता का कुछ अभाव नहीं होता। आहाहा! प्रभु! तेरी सत्ता कहाँ जायेगी? उस सत्ता का विचार भी किया है? कि अरे रे! मैं यह देह छोड़कर (कहाँ जाऊँगा)? देह में पाँच-पन्द्रह दिन, महीना, दो महीना, पाँच महीना, दस महीना, पाँच-दस वर्ष रहेगा। फिर छूट जायेगा, प्रभु! क्योंकि भिन्न चीज़ है। कहाँ जाना है? किस स्थान में? किस क्षेत्र में? किस काल में? कैसे भाव से जायेगा? आहाहा! सब पृथक्-पृथक् हैं। किसी के कारण से कोई नहीं है। आहाहा! एकत्व सप्तति में दृष्टान्त दिया है।

श्लोक-७०

और (इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—

(मालिनी)

असति च सति बन्धे शुद्धजीवस्य रूपाद्,
रहित-मखिलमूर्त-द्रव्यजालं विचित्रम् ।
इति जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां,
भुवनविदितमेतद्भव्य जानीहि नित्यम् ।।७०।।

(वीरछन्द)

बन्धन हो या मुक्त अवस्था विविध मूर्त द्रव्यों का जाल।
शुद्ध जीव के निज स्वरूप से भिन्न सर्वदा मूर्तिक-माल॥
शुद्ध वचन यह श्रीजिनपति का बुधपुरुषों को कहूँ सदा।
अहो भव्य ! त्रिभुवन प्रसिद्ध इस परम सत्य को जान सदा॥७०॥

श्लोकार्थः—''बन्ध हो न हो (अर्थात् बन्धावस्था में या मोक्षावस्था में), समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल (अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह) शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है'' ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं। इस भुवनविदित को (इस जगतप्रसिद्ध सत्य को), हे भव्य! तू सदा जान॥७०॥

श्लोक-७० पर प्रवचन

और (इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—

असति च सति बन्धे शुद्धजीवस्य रूपाद्,
रहित-मखिलमूर्त-द्रव्यजालं विचित्रम् ।

इति जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां,
भुवनविदितमेतद्द्रव्य जानीहि नित्यम् ।।७०।।

आहाहा! यह **जिनपतिवाक्यं** आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनपति का वाक्य यह है। '**शुद्धं बुधानां**' '**जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां**', '**भुवनविदितमेतद्द्रव्य जानीहि नित्यम्।**'

श्लोकार्थः—बन्ध हो न हो (अर्थात् बन्धावस्था में या मोक्षावस्था में), समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल... आहाहा! **(अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह) शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है...** शुद्ध जीव भगवान अन्दर चैतन्य के प्रकाश का पूर, ध्रुव एकरूप अनादि-अनन्त रहनेवाली चीज़, वह सर्व चीज़ से निराली भिन्न है। आहा! वह **बन्ध हो न हो (अर्थात् बन्धावस्था में या मोक्षावस्था में), समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल (अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह)...** आहाहा! क्या कहा? मुझसे भिन्न कर्म, पैसा, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार। यह सब **(अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह) शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है...** शुद्ध जीव के स्वरूप से अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! यह तो व्यापार मैंने किया, मुझे व्यापार में पैसे मिले... आहाहा! सब मिथ्यात्व है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

कोई द्रव्य किसी द्रव्य की पर्याय कर सकता तो नहीं परन्तु वह द्रव्य की पर्याय भी आगे-पीछे-आगे-पीछे होती है, (ऐसा नहीं है)। वह द्रव्य की पर्याय भी आगे-पीछे नहीं होती। आहाहा! जिस समय में जो पर्याय होनी होती है, वह होती है। पर्याय अर्थात् हालत-अवस्था। इस शरीर की अवस्था अभी ऐसे चलती है, वह अवस्था उसके कारण से होती है। आत्मा के कारण से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जीव निकल जाने के बाद शरीर की क्रिया क्यों नहीं होती?

पूज्य गुरुदेवश्री : निकल जाने के बाद उसकी अवस्था ऐसी नहीं है। उसकी अवस्था ऐसी ही होनी चाहिए, ऐसा कुछ है? उसकी अवस्था - पर्याय उसके स्वकाल में होती है। आहाहा! बोलना, चलना, यह सब जड़ की क्रिया है। आहाहा! उसका अभिमान छोड़ना और अपने ज्ञानस्वभाव में दृढ़ता लगाना कि मैं तो ज्ञायक हूँ। मुझमें जो वस्तु ज्ञात होती है, वह मुझसे भिन्न है और उस चीज़ से मैं भिन्न हूँ। आहाहा! यह कहा?

शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है... व्यतिरिक्त / पृथक् सर्व चीज़ें भिन्न हैं। आहाहा! अन्दर कर्म भिन्न, विकार भिन्न, तैजस-कार्मणशरीर भिन्न, औदारिकशरीर भिन्न। आहाहा! विकार की पर्याय स्वकाल से भिन्न। द्रव्य भगवान, चैतन्य भगवान उस विकार से और कर्म से भिन्न वस्तु है। तीनों काल में ऐसी बात है। **ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन...** यह है। मुनिराज स्वयं कहते हैं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। पहले कहा कि **मेरा ऐसा मन्तव्य है...** अब कहते हैं कि यह तो जिनपति का, **जिनदेव का शुद्ध वचन...** है। यह शुद्धवचन है। आहाहा! पर का कर नहीं सकता, पर को अपना मान नहीं सकता। अपने कारण से पर में कुछ फेरफार नहीं होता – ऐसा जिनपति का शुद्ध वचन। आहाहा! भगवान का वचन तो होता नहीं, परन्तु यहाँ निमित्त से कथन किया है कि दिव्यध्वनि में ऐसा आया है।

भगवान की दिव्यध्वनि, त्रिलोकनाथ अनन्त तीर्थंकर, अनन्त सर्वज्ञ, लाखों केवली सीमन्धर भगवान के पास विराजते हैं। तीर्थंकररूप से बीस विराजते हैं। सीमन्धर भगवान तो एक ही तीर्थंकर हैं परन्तु दूसरे क्षेत्र में दूसरे ऐसे बीस तीर्थंकर विराजते हैं और लाखों केवली विराजते हैं। उनमें जिनपति का वचन, शुद्ध वचन (यह है)। बाकी अशुद्ध वचन गड़बड़। आहाहा! **शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं।** आहाहा! क्या जवाबदारी कही? कि यह तीन लोक के नाथ की यह वाणी, बुधपुरुष जो चतुर पुरुष हैं, उनके लिये है। आहाहा! इतना जवाब आया कि बुधपुरुषों के लिये है। जो बात समझे और समझ में ले, उसके लिये यह वाणी है। आहाहा! **जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं।** आहाहा! और क्या कहते हैं?

इस भुवनविदित को (इस जगतप्रसिद्ध सत्य को),... यह जगतप्रसिद्ध सत्य है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, कुछ नहीं कर सकता, आत्मा बोल नहीं सकता, स्पर्श नहीं कर सकता, पर का कुछ काम नहीं कर सकता – यह जिनवचन, बुधपुरुषों ने कहा है। आहाहा! **इस भुवनविदित...** यह तो जगत में प्रसिद्ध है। आहाहा! यहाँ तो नया सुने या नहीं? आत्मा बिना वाणी निकलती है? आत्मा के बिना यह सब बनाते हैं? वस्त्र बनाते हैं? कुम्हार घड़ा बनाता है – तो आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने (समयसार) ३७२ गाथा में कहा है कि, हमें दिखायी नहीं देता कि घड़ा कुम्हार बनाता है। समयसार की ३७२ गाथा

में ऐसा लिखा है। घड़ा, घड़े से बनता है। कुम्हार उसे नहीं बनाता। आहाहा! रोटी, रोटी से बनती है, स्त्री से या तवे से नहीं बनती। आहाहा!

यह **जिनदेव का शुद्ध वचन...** है। है? **जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं।** जिसे यह बात रुचे, उसे कहते हैं। न रुचे, वह तो मूढ़ जीव अनादि काल से (भटक ही रहा है)। आहाहा! और **इस भुवनविदित...** आहाहा! यह तो जगत में प्रसिद्ध सत्य है। आहाहा! तुझे खबर नहीं। वीतराग की वाणी में तो जगत प्रसिद्ध है। उसके द्वारा यह कहा गया है, ऐसा जगत में प्रसिद्ध है। **हे भव्य!** इस भुवनविदित को, इस जगतप्रसिद्ध सत्य को, **हे भव्य! तू सदा जान।** दो बोल लिये। एक तो बुधपुरुषों के लिये लिया और फिर हे भव्यजीव! चाहे जो भव्य हो, तू भगवान है न, प्रभु! किस काल में तुझमें अपूर्णता और विकार है? किसी काल में तेरे आत्मा में विकार और कर्म नहीं है। चिदानन्द भगवान भिन्न विराजता है। प्रभु! यह जगत प्रसिद्ध, जिनवाणी में शुद्ध वचन प्रसिद्ध है। शुद्ध वचन कहा है। आहाहा!

शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं। इस भुवनविदित को (इस जगतप्रसिद्ध सत्य को), हे भव्य! तू सदा जान। आहाहा! **हे भव्य! तू सदा जान।** अमुक समय जान और अमुक समय फिर कर्ता हो और कर्म मेरा है तथा विकार मेरा है, ऐसा नहीं। आहाहा! बहुत गम्भीर भाषा! शब्द थोड़े परन्तु अन्दर गम्भीरता (बहुत है)। किसी समय में एक समय की पर्याय विकृत हो या अविकृत; उसका द्रव्य-गुण कर्ता नहीं है। आहाहा! क्योंकि प्रत्येक गुण की पर्याय षट्कारक से, स्वयं से स्वतन्त्ररूप से पर्याय जिस समय में होनेवाली है, उस समय में स्वयं से होती है। आहाहा! गजब बात है! यह वस्तु ऊँचा होता है तो उसके कारण से ऊँचा होता है। अंगुली ने इसे स्पर्श नहीं किया, अंगुली ने इसे स्पर्श नहीं किया। यह बात (कैसे जँचे)? जिनदेव का सत्यवचन बुधपुरुषों के लिये जगत विदित-जगत प्रसिद्ध है। आहाहा! यह जगत प्रसिद्ध बात है।

इसलिए **हे भव्य! तू सदा जान।** अमुक समय हाँ कर और फिर बदलाव हो, ऐसा नहीं। आहाहा! **सदा जान।** सदा ज्ञातादृष्टा रह जा। तेरी वस्तु ही ज्ञातादृष्टा है। उसमें किसी पर का स्पर्श नहीं है। उसे स्पर्शता नहीं तो कोई कर सके, ऐसा कैसे बने? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी चूमता नहीं। समयसार की तीसरी गाथा। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को

कभी स्पर्श नहीं करता, तो करे क्या ? ऐसी जिनदेव की जगतप्रसिद्ध सत्य बात बुधपुरुषों को कहते हैं। चतुर पुरुषों के लिये यह बात कहते हैं। आहाहा! बाकी पागल तो... आहाहा!

एक बार (संवत्) १९९७ में बात चलती थी। बात चलती थी, उसमें एक वकील बैठे थे। वे कहें - तुम इन्कार करते हो परन्तु लो, यह मैंने किया। यह हाथ मैंने हिलाया, ऐसा व्याख्यान में बोले। आहाहा! प्रभु! तुझे क्या कहें ? हाथ क्यों हिला है ? हाथ में कैसी पर्याय हुई है ? अन्दर आत्मा भिन्न क्या करता है ? इस भान बिना तू ऐसा कहता है कि हाथ ऐसा किया। आत्मा से हाथ ऐसा हुआ, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। बड़ा वकील था। उसे यह बात रुचि नहीं। क्योंकि दुनिया के माहात्म्य में कुछ करते हैं, कुछ दूसरे की सेवा करते हैं और जिस सम्प्रदाय में हैं, उसकी हम सेवा करते हैं, ऐसा अधिकपना मानना, वह महामिथ्यादृष्टि का अज्ञान है। आहाहा! जिस सम्प्रदाय में हैं, उसकी हम सेवा करते हैं। उसके गरीब लोग या धनवान या दूसरे लोग आवे तो उनकी हम मदद करते हैं। अरे! प्रभु! किस समय में कौन सी पर्याय किसी से होती है ? ऐसा तीन काल में भी नहीं है। कितने शब्द लिये हैं ?

ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन... शुद्ध वचन। आहाहा! पवित्र वचन **बुधपुरुषों को...** जो कोई जाननेवाले हैं, उन्हें कहते हैं। आहाहा! जिसे सत्यार्थ जानना है, उसके लिये वीतराग की सत्यवाणी है और जो जगतप्रसिद्ध है। आया ? **भुवनविदित।** आहाहा! वह जगतप्रसिद्ध है। इसलिए **हे भव्य! तू सदा जान।** आहाहा!

गाथा-४७

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जर-मरण-जम्म-मुक्का अट्ठ-गुणालंकिया जेण ।।४७।।

यादृशाः सिद्धात्मानो भवमालीना जीवास्तादृश भवन्ति।
जरा-मरण-जन्म-मुक्ता अष्ट-गुणालङ्कृता येन ।।४७।।

शुद्धद्रव्यार्थिकनयाभिप्रायेण सन्सारिजीवानां मुक्तजीवानां विशेषाभावोपन्यासोऽयम्।

ये केचिद् अत्यासन्नभव्यजीवाः ते पूर्वं सन्सारावस्थायां सन्सारक्लेशायासचित्ताः सन्तः सहजवैराग्यपरायणाः द्रव्यभावलिङ्गधराः परमगुरुप्रसादासादितपरमागमाभ्यासेन सिद्धक्षेत्रं परिप्राप्य निर्व्याबाधसकलविमलकेवलज्ञानकेवलदर्शनकेवलसुखकेवल-शक्तियुक्ताः सिद्धात्मानः कार्यसमयसाररूपाः कार्यशुद्धाः। ते यादृशास्तादृशा एव भविनः शुद्धनिश्चयनयेन। येन कारणेन तादृशास्तेन जरामरणजन्ममुक्ताः सम्यक्त्वाद्यष्टगुण-पुष्टितुष्टाश्चेति।

है सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।
गुण आठ से जो है अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं ॥४७॥

अन्वयार्थः—[यादृशाः] जैसे [सिद्धात्मानः] सिद्ध आत्मा हैं [तादृशाः] वैसे [भवम् आलीनाः जीवाः] भवलीन (संसारी) जीव [भवन्ति] हैं, [येन] जिससे (वे संसारी जीव सिद्धात्माओं की भाँति) [जरामरणजन्ममुक्ताः] जन्म-जरा-मरण से रहित और [अष्टगुणालंकृताः] आठ गुणों से अलंकृत हैं।

टीकाः—शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है।

जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए, वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए सहजवैराग्यपरायण होने से द्रव्य-भावलिंग को धारण करके परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए परमागम के अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके अव्याबाध (बाधारहित) सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-

केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये कि जो सिद्धात्मा कार्यसमसाररूप हैं, कार्यशुद्ध* हैं। जैसे वे सिद्धात्मा हैं वैसे ही शुद्धनिश्चयनय से भववाले (संसारी) जीव हैं। जिसकारण वे संसारी जीव सिद्धात्मा समान हैं, उस कारण वे संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं (सम्यक्त्व, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु तथा अव्याबाध इन आठ गुणों की समृद्धि से आनन्दमय है)।

गाथा-४७ पर प्रवचन

गाथा-४७

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जर-मरण-जम्म-मुक्का अट्ठ-गुणालंकिया जेण।।४७।।

है सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।
गुण आठ से जो है अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं॥४७॥

जैसे सिद्ध आत्मा हैं, वैसे भवलीन (संसारी) जीव हैं,... आहाहा! भव में लीन हैं तो भी संसारी शुद्ध हैं। आहाहा! वह द्रव्य कभी मलिन नहीं हुआ। आहाहा! **जिससे (वे संसारी जीव सिद्धात्माओं की भाँति) जन्म-जरा-मरण से रहित और आठ गुणों से अलंकृत हैं।**

टीका: —शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के... शुद्ध द्रव्य की प्रयोजन की दृष्टि से, त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि के प्रयोजन से शुद्ध-द्रव्य-अर्थिक=शुद्ध द्रव्य की प्रयोजन की दृष्टि से, अभिप्राय से, उस **नय के अभिप्राय से संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है।** आहाहा! संसारी जीव और मुक्त जीव; द्रव्यदृष्टि से द्रव्य तो है, वह है। पर्याय में अन्तर हो, चाहे तो निगोद की हो, चाहे तो सिद्ध की हो; द्रव्य तो जो है, वह है। द्रव्य में कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! कैसे जँचे? कसाईखाने लगावे, गायों को काटने के

१. कार्यशुद्ध=कार्य-अपेक्षा से शुद्ध।

यन्त्र (डाले)। तो कहते हैं, वह जीव सिद्धसमान है। वह मलिनता उसकी चीज़ नहीं है, वह क्रिया उसमें नहीं है। आहाहा! उसकी शाश्वत् वस्तु में तो ज्ञान भरा है।

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है। आहाहा! सिद्ध और संसारी दोनों में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर है वह तो पर्यायदृष्टि से-व्यवहारनय से देखने में आता है। वस्तुदृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! संसार में लीन हुआ है - ऐसा पाठ है, तथापि वह जीव सिद्धसमान है। लीन हुआ, वह उसकी चीज़ नहीं। आहाहा! अब ऐसी बात। पूरे दिन करना.. करना.. करना। ऐसा करना.. ऐसा करना.. धर्म के नाम पर भी प्रवृत्ति इतनी बढ़ गयी.. आहाहा! पूरे दिन यह पूजा, भक्ति, व्रत, तप, यात्रा। आहाहा! आना-जाना और लोगों को इकट्ठा करके हम कुछ करते हैं। गिरनार जा आये। आहाहा! अमुक (जगह) जा आये, यह यात्रा की। कहाँ प्रभु! तू तेरे क्षेत्र में से कभी दूसरे क्षेत्र में गया नहीं न! दूसरी पर्याय है, उसमें भी तू नहीं गया न! दूसरे क्षेत्र में गया नहीं, दूसरी पर्याय में गया नहीं तो दूसरे के भाव में तू कहाँ से गया? आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़े। वस्तुस्थिति यह है। इसलिए कहा न, 'जिनवचन का सत्यवचन...' जिनवचन का सत्यवचन। दूसरे व्यवहार के वचन बहुत होते हैं। परन्तु जिनवचन का सत्यवचन। आहाहा! व्यवहार वचन बहुत होते हैं, जिनवचन में भी होते हैं, आहाहा! परन्तु जिनवचन का सत्यवचन, शुद्ध जीव का वचन, जगत विदित-जगत प्रसिद्ध वचन। आहाहा! एक दूसरे का दूसरा कुछ कर सकता, ऐसा नहीं है। आहाहा! ओहोहो! पूरी दुनिया की कर्ताबुद्धि उड़ गयी। एक द्रव्य का भी कर्ता हो जाए एक द्रव्य की पर्याय का कर्ता हो जाए (तो) उसे तीन लोक के पर्याय की कर्ताबुद्धि हो गयी। तीन लोक की कर्ताबुद्धि की मान्यता हो गयी। आहाहा! बहुत कठिन बात है, भाई! मार्ग...

मुमुक्षु : कठिन नहीं, अपूर्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु तो अपूर्व है। अपूर्व बात यही है। आहाहा! सुनने को मिलती नहीं और सुनने को मिले तो एकान्त है। कोई किसी का कर नहीं सकता तो पूरी दुनिया कैसे चलती है? किस प्रकार यह चलती है? नरक में कैसे जाता है? देव में कैसे जाता है? आहाहा! सुन न, प्रभु! यह गति, गति की पर्याय; क्षेत्र, क्षेत्र की पर्याय; जीव-जीव का द्रव्य भिन्न है। आहाहा!

जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए,... जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव। आहाहा! जिन्हें मोक्ष नजदीक है। संसार का किनारा आ गया है। आहाहा! नौका में से उतरकर पैर रखे इतनी देर है। आहाहा! जो जीव अति आसन्न भव्य जीव है। अकेला आसन्न जीव नहीं लिया। अति-आसन्न भव्यजीव है। **वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए...** आहाहा! संसार की क्रिया के क्लेश से थके हुए चित्तवाला होते हुए। पहले तो यह होता है। आहाहा! संसार की कोई भी क्रिया क्लेशदायक है। उस किसी क्रिया का कर्ता माने तो क्लेश होता है। आहाहा! पुस्तक बनाने में वह भी अनन्त परमाणु की पर्याय है, वह भी उसके समय में होती है। आचार्य महाराज कहते हैं कि मेरा नाम न लेना। मोह से मत नाचना, मैंने टीका बनायी है, ऐसे मिथ्यात्व से मत नाचना। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो सब पुस्तक में कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत जगह कहा है। आहाहा! प्रत्येक ग्रन्थ के पीछे यह श्लोक रखा है। मैंने यह टीका की नहीं। मैंने बनायी नहीं। पुस्तक (टीका / ग्रन्थ) मुझसे बनी नहीं। अरे! मेरा सुनकर तुझे ज्ञान होता है, ऐसा प्रभु! तुम मोह न नाचो। आहाहा! क्योंकि तुझे जो परलक्ष्यी ज्ञान होता है, वह भी तुझसे होता है। सुनते समय ज्ञान होता है, वह सुनने से नहीं होता; अपनी पर्याय की योग्यता से ज्ञान होता है। वह सम्यग्ज्ञान नहीं है, वह सम्यग्ज्ञान नहीं, वह ज्ञान भी स्वयं से उत्पन्न होता है; सुनने से नहीं। आहाहा!

अपने ज्ञान में परलक्ष्यी ज्ञान तो जरा भी काम नहीं करता। सुना, बहुत वांचन किया परन्तु अन्दर जाने में परलक्ष्यी ज्ञान काम नहीं करता, प्रभु! आहाहा! बहुत कठिन बात! वह लक्ष्य छूटे, परलक्ष्य से (पर के) आलम्बन से उत्पन्न हुआ, उस ज्ञान का भी लक्ष्य छूटे और अन्तर्दृष्टि में जाये, तब सम्यग्ज्ञान होता है। आहाहा! ऐसी बात है।

आसन्न-भव्यजीव हुए, वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए सहजवैराग्यपरायण होने से... वे जीव सहजवैराग्यपरायण होने से। संसार के क्लेश से थक गया। अरे! यह क्या? मैं कौन और यह क्या? और वैराग्यववाला हुआ। वैराग्य का अर्थ (यह है कि) शुभ-अशुभभाव से भी विरक्त हुआ। शुभ और अशुभभाव से विरक्त होना, उसे वैराग्य कहते हैं। आहाहा! यहाँ (अभी अज्ञानी) कहते हैं कि शुभभाव

करते-करते कल्याण होगा। क्या करें ? प्रभु ! उसे (ऐसा कहनेवाले को सत्य) मिला नहीं। वह भगवान है। उसे भी सुख की तो अभिलाषा है। सुख की अभिलाषा होने पर भी विपरीत दृष्टि है। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं। **संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले...** थके हुए चित्तवाले। आहाहा ! सब बात से थक गया, अब तो मुझे आत्मा का कार्य करना है; दूसरा कुछ नहीं करना। ऐसा जिसका चित्त हुआ, वह **सहजवैराग्यपरायण होने से...** स्वाभाविक वैराग्य, ज्ञान और वैराग्य दोनों साथ में रहते हैं। जब सम्यग्ज्ञान हुआ तो वह पुण्य-पाप से तो विरक्त ही होता है। वैराग्य साथ में ही है। अस्तिरूप से जहाँ भान हुआ, वहाँ विरक्त अर्थात् नास्तिपने का ज्ञान भी साथ में होता है। मैं पुण्य-परिणाम से विरक्त हूँ। आहाहा ! शुभभाव से मुझे लाभ होगा या शुभभाव करने से क्रम-क्रम से आगे बढ़ा जायेगा। पहले अशुभ घटता है, फिर शुभ में आना, अशुभ घटाकर फिर शुद्ध में आना - ऐसा क्रम जगत मानता है, ऐसी बात नहीं है। आहाहा !

यह कहते हैं **सहजवैराग्यपरायण होने से द्रव्य-भावलिंग को धारण करके...** आहाहा ! द्रव्यलिंग तो नग्नदशा। भावलिंग अन्दर निर्विकल्पदशा। आहाहा ! द्रव्यलिंग दशा उसकी अवस्था के कारण होती है, आत्मा से नहीं होती। आत्मा वस्त्र उतारकर नग्न हो, यह क्रिया उसकी नहीं है। आहाहा ! कौन माने ? वस्त्र उतारने की क्रिया आत्मा की नहीं है, उस समय में उसकी उतरने की क्रिया, उसके स्वकाल में आती है तो वे वस्त्र छूट जाते हैं। आहाहा ! क्योंकि पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं।

आत्मा भगवान पर के ग्रहण-त्याग से शून्य है। शक्ति में लिया है। त्यागोपादान-शून्यत्वशक्ति। पर का त्याग और पर के ग्रहण से शून्य है। आहाहा ! एक भी रजकण का ग्रहण, एक रजकण को छोड़ना, इससे तो रहित प्रभु है। अनादि-अनन्त रहता है। आहाहा ! उसे बाहर के त्याग जहाँ करे तो वहाँ हो जाता है कि मैंने त्याग किया। अन्तर में राग की एकता का त्याग (होना), वह भी व्यवहार है। अन्दर भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति तो विराजमान है ही; उसमें जहाँ दृष्टि लगी, वहाँ एकता टूट गयी। एकता तोड़नी पड़ती नहीं है। आहाहा ! कठिन बात है, भाई ! मूल बात कठिन है। वीतराग की मूल बात सूक्ष्म है। आहाहा !

यह यहाँ कहते हैं, **सहजवैराग्यपरायण होने से द्रव्य-भावलिंग को धारण करके परमगुरु के प्रसाद से...** उसका निमित्त परमगुरु होना चाहिए - (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! कुगुरु से यह निमित्त नहीं मिलता। आहा..हा..! तथापि गुरु से नहीं होता परन्तु परमगुरु के प्रसाद से (अर्थात्) उनका उपदेश सुना, उसे 'प्रसाद से' - ऐसा कहने में आता है। आहाहा! बहुत बात...!

मुमुक्षु : स्पष्ट निमित्त लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट निमित्त है, ऐसा बताया है। उससे होता है, ऐसा नहीं। पाठ तो ऐसा है। **परमगुरु के प्रसाद से...** देखो!

मुमुक्षु : उनके प्रसाद से तो हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त से कथन है। पहले आ गया न? जगतविदित-जगत प्रसिद्ध। शुद्धनय से आत्मा में कोई विकार-फिकार नहीं है और कुछ छोड़ना है नहीं। यह तो जगत प्रसिद्ध भगवान आत्मा विराजमान है। अनादि से जगत प्रसिद्ध आत्मा है, तो आत्मा अपना कल्याण करके सिद्ध में चला जाता है। आहाहा! निमित्त तो अनन्त हैं। हैं तो क्या हुआ? उससे कुछ होता है? ऐसा नहीं है। निमित्त को स्पर्श भी नहीं करता। निमित्त को स्पर्श नहीं करता और निमित्त अपने को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसे स्थान में डाले, **परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए...** इसका अर्थ इतना कि इसे सुनने में परमसत्य कहनेवाले मिले। बस! परमसत्य कहनेवाले मिले, इतनी बात कहने में आती है। आहाहा!

परमागम के अभ्यास द्वारा... अर्थात्... परन्तु **परमागम के अभ्यास द्वारा...** वापस परमागम का अभ्यास। एक ओर ऐसा कहना कि परमागम का अभ्यास, बुद्धि पर में जाती है तो व्यभिचारिणी है। पद्मनन्दीपंचविंशति (में) ऐसा आया है। जो बुद्धि शास्त्र में जाती है, वह व्यभिचारिणी बुद्धि है क्योंकि पर की ओर जाती है। यहाँ तो उसकी अस्ति बताते हैं। जब समझनेवाला सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब सत्श्रुत निमित्त होता है और सद्गुरु ज्ञानी निमित्त होते हैं। बस इतना। उससे अन्तर में होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह बात है। नहीं तो विरुद्ध हो जाये।

एक ओर जगतप्रसिद्ध शुद्धवचन जिनवचन का ऐसा आया कि कोई किसी का

कर्ता नहीं है। आया न? पहले आ गया न? ऐसा बुधपुरुष को कहते हैं। **ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं। इस भुवनविदित को (इस जगतप्रसिद्ध सत्य को), हे भव्य! तू सदा जान।** यह जान। आहाहा! जान, उसे कहा। जान अर्थात् उसे जानना है। जानना है तो यह सुना, उसके ज्ञान से ज्ञान नहीं होता। यह अन्तर में दृष्टि करता है, तब ज्ञान होता है। आहाहा! हमारा उपकार मानना, यह सब बात निमित्त की है। आहाहा! 'परस्परोग्रहो जीवानाम' - आता है न? जीव का परस्पर उपग्रह / निमित्त है। उसका अर्थ ऐसा है किया है, सर्वार्थसिद्धि (टीका) से निकाला है (कि) उपकार का अर्थ निमित्त है। उपकार (अर्थात्) उससे कुछ होता है, ऐसा नहीं है। परन्तु उस समय सत्पुरुष का निमित्त है और सत्पुरुष की वाणी का निमित्त है परन्तु उससे इसमें होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

ऐसे **अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके अव्याबाध (बाधारहित) सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये..** आहाहा! **कि जो सिद्धात्मा कार्यसमसाररूप हैं,..** इसकी व्याख्या आगे करेंगे..

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)